गीता में कृष्ण उवाच क्यों नहीं? श्री भगवान् उवाच क्यों?

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

गीता कृष्ण को भगवान् के रूप में स्वीकारती है। स्वयं भगवान् ने योगस्थ होकर, समाधिस्थ होकर भागवत स्थिति में स्थित होकर, ब्रह्म स्थिति में स्थित होकर गीता का उपदेश दिया है यह बात स्वयं भगवान् ने प्रकट की है।

गीतोपदेश के पश्चात् युद्ध होता है। युद्ध में विजयी पाण्डवों का राज्याभिषेक आदि सभी कृत्य सम्पन्न हो चुकने पर श्रीकृष्ण द्वारका लौटने की प्रस्तुति करते हैं तब अर्जुन उनसे निवेदन करता है कि आपने जो गीतोपदेश दिया था उससे बड़ा आनन्द आया था पर युद्ध की विषम परिस्थिति में तथा उसके पश्चात् कार्यव्यस्तता से पुनः स्मरण एवं अभ्यास न कर पाने से भूल गया हूं कृपया उसे पुनः सुनावें।

तब भगवान् कहते हैं यह बड़ा दुर्भाग्य है कि तुमने अनमोल उपदेश को भूला दिया। उस समय मैं योगस्थ था, ब्रह्मस्थ था। योगस्थ होकर तुम्हें उपदेश दिया था। उस समय तुम में एक शिष्य भाव, आर्त्तभाव प्रकट हुआ और मेरे में गुरु भाव। अब वह स्थिति सम्भव नहीं है।

अपने शास्त्र की परम्परा रही है कि ब्रह्मबुद्धि में स्थित होकर उपदेश देने पर 'श्री' शब्द का प्रयोग होता है। जीव स्तर पर या जीव बुद्धि होने पर 'श्री' शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

जब नारद मोहग्रस्त होते हैं एवं भगवान् से उनके रूप की याचना करते हैं, फिर भगवान् को अभिशाप आदि देते समय श्री नारद के स्थान पर केवल नारद उवाच शब्द का प्रयोग रामायण में हुआ है। यही स्थिति पार्वती के साथ भी है। जब पार्वतीजी को महर्षि अगस्तय के विषय में संशय होता है, फिर प्रभु राम के विषय में संशय होता है यानी बुद्धि ब्रह्मभाव से उतरकर जीव भाव में स्थित हो जाती है तब पार्वतीजी के प्रति भी 'श्री' शब्द तुलसीदासजी प्रयोग नहीं करते हैं।

गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने अपने आपको भगवान् घोषित किया है। यह निष्काम कर्मयोग की परम्परा बताते समय भी स्पष्ट है। वे कहते हैं सर्वप्रथम यह उपदेश मैंने सूर्य को दिया, वहां से परम्परा चली जो राजर्षियों में प्रचलित रही है पर कालान्तर में विलुप्त हो गई अतः उसे मैं पुनः तुम्हें दे रहा हूं। तब अर्जुन को संशय होता है आपका जन्म तो अभी का है एवं सूर्य का जन्म बहुत प्राचीन है। तब भगवान् कहते हैं—तेरे-मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। तू जीव होने से भूल गया है, मैं भगवान् हूं इसलिए मुझे याद है। मेरा जन्म-कर्म सभी दिव्य होता है।

फिर अवतार सिद्धान्त में भी अपने को भगवान् घोषित करते हैं, जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, दुष्ट बढ़ जाते हैं तब-तब मैं आता हूं—साधुओं के परित्राण एवं दुष्टों के नाश के लिए। यहां साधु रूपी पाण्डवों का परित्राण कर रहे हैं। साधु उग्रसेन, वसुदेव, देवकी की रक्षा कर रहे हैं दुष्ट कौरवों, कंस आदि का नाश करते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान् ने जहां-जहां 'अहम्' शब्द 'मम' शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ मधु सूदन सरस्वती ने जो स्वयं कृष्ण के परम भक्त होते हुए भी, उसका अर्थ कृष्ण न करके भगवान् किया है। अतः गीता में कृष्ण की शरण में जाने का अर्थ भगवान् की शरण में जाना है। आचार्य शंकराचार्य ने 'अहम्', 'मम' शब्द का अर्थ 'ब्रह्म' किया है कृष्ण नहीं। स्वयं भगवान् ने 'अहम्' 'मम' शब्द को सर्वश्रेष्ठ अविनाशी, परमभाव, ब्रह्मभाव, असीम, अव्यक्त, अरूप के अर्थ में किया है। गीता के सातवें अध्याय के 24वें श्लोक में ऐसा अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया है।

अव्यक्तं व्यक्ति-मापन्नं, मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भाव-मजानन्तो, ममाव्यय-मनुत्तमम्॥

बुद्धिहीन मनुष्य मेरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी परम भाव को न जानते हुए मुझ अव्यक्त को (मनुष्य की तरह जन्म लेकर) व्यक्त-भाव से प्राप्त हुआ मानते हैं॥

गौड़ीय सम्प्रदाय ने 'अहम् मम' का अर्थ कृष्ण किया है। इनके यहां कृष्ण का अर्थ वसुदेव पुत्र-कृष्ण नहीं है वरन् कृष्णमस्तु भगवान् स्वयं है। वे अन्य को तो अवतार मानते हैं कृष्ण को अवतारी। कृष्ण को छोड़कर गौड़ीय सम्प्रदाय सबको देव कोटि में मानते हैं। अतः अन्य अवतारों को देवता मानते हैं। अर्थात् इनके यहां कृष्ण का अर्थ भगवान् स्वयं ही है।

अतः तीनों विचारों से 'अहम्' एवं 'मम' शब्द का प्रयोग वसुदेव पुत्र कृष्ण के अर्थ में न होकर भगवान् कृष्ण या साक्षात् ब्रह्म के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

जगत्, भक्ति और ब्रह्म तीनों को गौड़ीय सम्प्रदाय में स्वतंत्र तत्त्व माना गया है। उनके यहां जगत् भी सत्य है। जगत् को अनित्य तो मानते हैं, परिवर्तनशील मानते हैं पर मिथ्या नहीं स्वीकारते।

भक्ति को तो वे स्वतंत्र तत्त्व मानते हैं।

मुक्ति को तो वे मानते ही नहीं, या बहुत तुच्छ।

भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

और ब्रह्म तो सत्य है ही। वे ब्रह्म को एक नाम देते हैं वह है कृष्ण। वे ब्रह्म को कृष्ण के नाम से मानते हैं। वे ही एकमात्र भगवान् हैं अन्य सब तो देवी-देवता हैं। अतः कृष्ण के समतुल्य राम, शिव, शक्ति, काली नहीं हो सकते। वे एकमात्र कृष्ण का ही भजन करते हैं।

पर श्रुतिमाता का उद्देश्य तीन तत्त्व को मानना नहीं है। वह तो एकत्व की प्रतिपादक है। जागतिक मनुष्यों को प्रथम में एकत्व की बात सुपाच्य नहीं हो सकती। इसलिए प्रथम में तीन तत्त्वों का प्रतिपादन करती हैं।

जिनका आधार दुर्बल है, उनके लिए जगत् की बात करती हैं। एकदम से प्रथम में ही जगत् को उड़ा देंगे तो कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा।

जिनका कुछ आधार ठीक है उन्हें भक्ति की बात बताते हैं। भक्ति मुक्ति प्राप्ति का, प्रभु प्राप्ति का उपाय है, साधन है, साध्य नहीं। भक्ति मुक्ति से परे की चीज नहीं है। भक्ति से मुक्ति तक पहुंचते हैं और जिनका आधार सुदृढ़ है उनके लिए ब्रह्म की बात बताती हैं। ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है। ब्रह्म के आधार पर जगत् भास रहा है, और ब्रह्म प्राप्ति का उपाय भक्ति है। जगत् और भक्ति की सता मध्यकाल में ही है। व्यवहार काल में ही है परमार्थ काल में नहीं।

श्रुतिमाता का उद्देश्य जगत् प्रतिपादन का नहीं है। वह तो जगत् से परे परमात्मा का प्रतिपादन करना है पर जागतिक मनुष्य को जागतिक आधार से ही समझाना पड़ता है इसलिए मात्र जगत् का प्रतिपादन करती हैं। जगत् का प्रतिपादन चाहे त्रिविधिकरण के आधार पर करे या पंचीकरण के आधार पर करे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे तो जगत् से परे परमात्मा तक ले जाना है।

आदि शंकराचार्य आज से 2500 वर्ष पूर्व हुए जब आधुनिक विज्ञान का उद्भव नहीं हुआ था। उस समय ब्रह्म सूत्र पर विवेचना करते हुए यही बात कही गयी थी कि श्रुतिमाता का उद्देश्य सृष्टि की व्याख्या नहीं है। अतः सृष्टि के प्रतिपादन में विगान है। याने 18 प्रकार से सृष्टि का प्रतिपादन हुआ है। चूंकि सृष्टि प्रतिपादन उद्देश्य नहीं है अतः उसमें उन्होंने समन्वय का प्रयास किया है। ब्रह्म प्रतिपादन में श्रुतिमाता का उद्देश्य है अतः उसमें कोई विगान नहीं है।

मूल बात यही है कि हमें जगत् के आधार पर जगत् के पार परमात्मा तक पहुंचना है इसीलिए जगत् की व्याख्या हुई है। अतः कहीं पंचीकरण के आधार पर, तो कहीं त्रिविधिकरण के आधार पर तो कहीं और भी अन्य प्रकार से।

इस विवेचन से स्पष्ट है अर्जुन को गीतोपदेश योग भाव में, भागवत भाव में, ब्रह्म भाव में स्थित होकर किया है, इसलिए कृष्ण उवाच न कहकर श्री भगवान् उवाच कहा गया है।